Bhram Rishi KrishanDutt Ji Maharaj Patrika March2013

॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हम लाखों-करोड़ों वर्षों से अथवा अरबों वर्षों से न मालूम कितना समय हो गया। प्रभो ! जब आपसे हमारा विच्छेद हो गया था। हे प्रभो ! हम पुनः से सन्धि चाहते हैं और उस वैदिक प्रकाश को हम अपनाना चाहते हैं जिस प्रकाश में हमारी और आपकी, दोनों की सन्धि होगी। प्रभो ! वह एक पथ है वह प्रकाशमयी पथ कहलाया गया है। आज हम उस पथ को प्रभो ! वास्तव में पुनः से अपनाना चाहते हैं। हे भगवन् ! यह सँसार तो विडम्बित (छलनामय) होता रहता है, यहाँ नाना प्रकार के विवाद होते रहते हैं। हे प्रभु ! हम तो आपके समीप आए हैं, आपकी दया चाहते हैं। आपकी महत्ता चाहते हैं जिस महत्ता के प्रकाश में हम अपने जीवन को वास्तव में सूक्ष्म से सूक्ष्म बना करके और आपके प्रति आपकी सूक्ष्मता में हमारा सन्निधान अथवा दोनों की सन्धि हो जाए। प्रभो ! जैसे दिवस और रात्रि की सायंकाल को दोनों की सन्धि होती है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

यौगिक प्रवचन माला भाग-9 —— प्रवचन-दिनाँक 6 अक्टूबर, 1972

अंक : 486 समग्र अंक : 561
वर्ष : 41 समग्र वर्ष : 47

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	1
2.	भौतिक वाद और आध्यात्मिकवाद	पूज्यपाद-गुरुदेव	3-20
3.	पाँच प्रकार के यज्ञ	पूज्यपाद-गुरुदेव	21-27
4.	गृह-प्रवेश	पूज्यपाद-गुरुदेव	28-32
5.	अग्नि के स्वरूप	पूज्यपाद-गुरुदेव	33
6.	मन की शक्ति	पूज्यपाद-गुरुदेव	34
7.	Two Souls in one Body	पूज्यपाद-गुरुदेव	35-36
8.	दान, पुस्तकों की सूची व सूचना इत्यादि	पूज्यपाद-गुरुदेव	37-40

शुभकामना

शिवरात्रि एवम् होली के अवसर पर आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएँ

शृङ्गीऋषि बेवसाईट
www.shringirishi.in

॥ ओ३म् ॥

भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही नाना प्रकार से मेरे उस देव की आभा के ऊपर विचार विनिमय होता रहा है। हमने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय कराते हुए कहा था कि **मानव के समीप दो प्रकार की आभाएँ रहती हैं।** इस सँसार को जानने के लिए मानव परम्परा से प्रयास करता रहा है और उसकी उड़ान दो प्रकार की रही है। एक तो वह उड़ान है जिस उड़ान को हम भौतिकवाद कहा करते हैं और द्वितीय आध्यात्मिक उड़ान है।

हमारे यहाँ परम्परा से दोनों प्रकार की उड़ान उड़ने वाले आचार्यजनों ने एकान्त स्थली में विराजमान हो करके नाना प्रकार का विचार किया और अपने जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार की वार्ताओं को उच्चारण किया। उनकी आभा मानवीय समाज में विराजमान रही है; जिस पर हम सदैव यह विचार विनिमय करते रहते हैं। मनुष्यत्व और प्राणत्व के सम्बन्ध में, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियों के सम्बन्ध में, मानव अपने जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ता रहा है। सबसे प्रथम वह उड़ान उड़ता है कि इस सँसार को जाना जाए, जो कि सँसार हमारे समीप विराजमान है। इस सँसार में प्रत्येक मानव अपनी आभा में

आभासित हो रहा है और उस चेतना पर विचार विनिमय करता रहता है कि यह चेतना क्या है? जब चेतना पर उड़ान उड़ता है तो उसके पश्चात् परमाणुवाद के क्षेत्र पर भी जाता है। हमने बहुत पुरातन काल में नाना ऋषि मुनियों की चर्चाएँ की हैं और यह कहा है कि प्रत्येक मानव परम्परा से उड़ान उड़ता रहा है। वह माता वसुन्धरा के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने लगता है कि वह माता वसुन्धरा क्या है? जिसके गर्भ में यह सँसार वशीभूत हो रहा है। वेद का ऋषि कहता है कि **यह सँसार वसुन्धरा के गर्भ में वशीभूत हो रहा है** और उसी के गर्भ में विराजमान हो करके यह वशीभूत होता हुआ अपने में यह स्वीकार कर रहा है कि वास्तव में मैं उस परमपिता परमात्मा की अमृतमयी आभा का पान कर रहा हूँ।

मानव की उड़ान

एक मानव यह उड़ान उड़ने लगता है कि मैं परमाणुवाद को जानना चाहता हूँ। मेरे मुखारबिन्द से दैवी शब्द उच्चारण होता है, उस शब्द की कितनी गति है? हमारे नेत्रों में जो आभा उत्पन्न हो रही है उसकी कितनी तीव्र गति है? जब इन गतियों पर विचार विनिमय करने लगता है तो एक-एक परमाणुवाद पर उनका अन्वेषण प्रारम्भ हो जाता है। वह भौतिकवाद के ऊँचे शिखर पर जाने के लिए परम्परा से कटिबद्ध रहा है। क्योंकि यह सँसार अध्याय है। क्योंकि मानव के शरीर में एक मनस्तत्व है और एक प्राणत्व है; दोनों इतने सूक्ष्मता से रहते हैं और मानव की आकांक्षा रहती है कि मैं अपने सखा को जाने के लिए सदैव तत्पर रहूँ।

हमारे इस मानव शरीर में जिसे मनस्तत्त्व कहते हैं यह आभा वाला ऐसा विचित्रवत है और प्रकृति का यह सबसे सूक्ष्म तत्व माना जाता है और इसकी सूक्ष्मता विचित्र है। वह इस सँसार को वृक्ष रूप में दृष्टिपात करना चाहता है। जब इसका विश्लेषण करता है तो जैसे

वट वृक्ष है, वह सूक्ष्म अंकुर रूपों में बीज में रहता है। परन्तु उसी वट वृक्ष के बीज में यह वट वृक्ष ओत-प्रोत रहता है। इसी प्रकार एक-एक शब्द में यह परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान ओत-प्रोत हो रहा है। जब ऋषि मुनि अपने ब्रह्मचारियों के मध्य में यह विचार विनिमय करते रहते थे कि सँसार को जानो। इसको कल्प वृक्ष की तरह जानों। यह सँसार है क्या? इसके ऊपर कल्पना करो। आचार्यों का और ब्रह्मचारियों का अपने-अपने आसन पर विराजमान हो करके चिन्तन होना प्रारम्भ होता था। वे उड़ान उड़ते रहते थे। उनकी उड़ान कहीं गोमेध-याग पर जा रही है; कहीं अजामेध याग पर परणित हो रही है। नाना प्रकार के यागों में परणित होने वाला यह मानव समाज शान्ति से विराजमान हो कर इस सँसार के सम्बन्ध में विचारने लगता है कि आज मैं गोमेध याग करने जा रहा हूँ। सँसार में प्रत्येक मानव गोमेध, अजामेध, अश्वमेध याग करने के लिए आया है। ऐसा मानव अपने में अनुभव करता है कि मैं विष्णु याग करने के लिए आया हूँ। नाना प्रकार के यागों के कर्म काण्ड में परिणत हो जाता है।

गोमेध-याग की विवेचना

हमारे यहाँ गो नाम पशु को कहा जाता है। गो नाम के नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। जहाँ गो नाम पशु को कहते हैं, वहाँ ब्रह्मचारी को भी, जब विद्यालय में प्रवेश नहीं करता उससे पूर्व वह पशु के तुल्य होता है। जब आचार्य के कुल में प्रवेश करता है तो आचार्य उसका मेध करा देता है अथवा उसे मेध में परणित करा देता है। **मेध नाम पवित्र व्रत का तथा विद्या का है।** क्योंकि जब हम विद्या के गर्भ में परणित होते हैं, उसके ऊपर विचार विनिमय करने लगते हैं तो हम गोमेध-याग करते हैं। आचार्यजन एवं ब्रह्मचारी दोनों विराजमान हो करके जब गोमेध-याग करते हैं तो इस याग का परिणाम होता है कि यह राष्ट्र, समाज सर्वत्र एक उच्चता को प्राप्त होता रहता है। हमारे यहाँ परम्परा से ही ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ने वाले ब्रह्मचारी को आचार्य

कहता है-आओ मैं तुम्हें लोक लोकान्तरों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। वेद मन्त्र का उच्चारण हो रहा है। उसकी आभा उसके मुखारबिन्द में ओत-प्रोत है, सर्वत्र विज्ञान उसके अन्तःकरण से उद्बुद्ध हो रहा है। आचार्य कहता है कि आओ ब्रह्मचारी आज मैं तुम्हें लोकों के क्षेत्रों में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ एक दूसरा मण्डल एक-दूसरे में कटिबद्ध हो रहा है। एक दूसरे की सहकारिता को प्राप्त हो रहा है। मेरे उस देव की महिमा कितनी महान् है कि जितना यह लोक लोकान्तरों का मण्डल है, जितने सौर मण्डलों का यह जगत है - एक मण्डल दूसरे मण्डल से मिलान नहीं कर पाता। यह कैसी मेरे देव की विचित्रता है। जहाँ हम यह गाथा गाते रहें कि यह ब्रह्माण्ड क्या है? हम भौतिक विज्ञान की उड़ान उड़ते रहे वहाँ जो परमपिता परमात्मा रचयिता है, जो वैज्ञानिक है उसके ऊपर भी विचार विनिमय होता रहे। जिससे मानव अपनेपन में अभिमानी न बन जाए कि मैंने इतने भौतिकवाद यन्त्रों को जाना है। मैंने परमाणुओं को जानकर के नाना प्रकार के मन्त्रों तन्त्रों को जाना है। जब मानव इस प्रकार प्रकृति के गर्भ में समा जाता है तो एक परमाणु को जानता है तो द्वितीय परमाणु उसके समीप उपस्थित हो जाता है, एक लोक को जानता है द्वितीय मण्डल इसके द्वार पर उपस्थित हो जाता है। एक सौर मण्डल को जानता है द्वितीय सौर मण्डल उसके समीप विराजमान है।

विज्ञान से सँसार मापा नहीं जाता

हमारे यहाँ नाना वैज्ञानिक हुए, जैसे मैंने पुरातन काल में चर्चाएँ करते हुए कहा कि जैसे देव ऋषि नारद मुनि हुए। नारद मुनि अपनी विज्ञानशाला में जब विचार विनिमय करने लगे तो एक समय महात्मा ध्रुव ने भी कहा कि आप अपनी विज्ञानशाला में क्या दृष्टिपात कर रहे हैं? आपने कहाँ तक इस विज्ञान को जाना है? उस समय देव ऋषि नारद ने यह कहा कि हे वत्स ! मैं तो यह विचारता रहता हूँ कि यह कैसा विचित्र जगत है। इसको जानते रहो, परन्तु यह जाना नहीं जाता। हम सँसार को विज्ञान से नापना चाहते हैं, लोक लोकान्तरों की जानकारी करके इस सँसार को नापना चाहते हैं परन्तु यह मापा नहीं जाता। परमाणुवाद के द्वारा इस सँसार को नापना चाहते हैं परन्तु नापने में नहीं आता। हे वत्स ! मेरे विचार में तो यह आ रहा है कि हम सदैव यह विचारते चले जाएँ। जैसे भारद्वाज ऋषि की विज्ञानशाला में कुछ आकाश गँगाओं का मैंने वर्णन करते हुए कहा था। परन्तु देव ऋषि नारद मुनि का विज्ञान इतना नितांत था। इतना विचित्र था कि उन्होंने **अपनी विज्ञानशाला में एक सौ सत्रह प्रकार की आकाश गंगाओं का दिग्दर्शन किया।** परन्तु ऋषि का यह कथन है कि एक आकाश गंगा में अरबों खरबों मण्डल हैं, अरबों खरबों आभाएँ ओत प्रोत हो रही हैं। उनमें निहारिकाएँ विराजमान हैं। आज विचार आ रहा है कि हम सँसार को नापना चाहते हैं विज्ञान के द्वारा। मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में प्रकट कराते हुए कहा था कि यह सँसार विचित्रता को प्राप्त होता रहा है। मैंने अपने वत्स से यह कहा कि हे पुत्र ! यह तो परम्परा से ही विचित्र है, यह नवीन वाक्य नहीं है। क्योंकि **जितना भी विज्ञानवाद है इसमें वृद्धपन नहीं आता।** जिस भी काल में इस पर विचार विनिमय करने लगोगे उसी समय यह नवीन का नवीन तुम्हारे समीप आ जाएगा। क्योंकि इसमें प्रकृति सत् है। प्रकृति के विज्ञान को जिस भी काल में जानोगे उसी काल में नवीन हो करके तुम्हारे समीप आ जाएगा। क्योंकि इसमें वृद्धपन नहीं आता। जब वृद्धपन नहीं आता तो यह वाक्य समाप्त हो जाता है कि किसी काल में इसको जानने वाले नहीं थे। ऐसा कदापि नहीं होता। क्योंकि हमारे ऋषि मुनि सदैव यह विचारते रहते थे। जब हमने इस सँसार को जान लिया तो अभी तो हमें उस क्षेत्र में भी जाना है जिस

क्षेत्र में जाने के पश्चात् हमारा मानवीय जीवन ऊँचा बनेगा। हमारे मानवीय जीवन में एक आभा में, एक प्रकाश में जाने के पश्चात् एक आनन्दवत को प्राप्त होता रहेगा।

मेरे प्यारे ! ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और नाना ऋषिवर जब ब्रह्मचारियों के मध्य में विराजमान हो करके अपने ब्रह्मचारियों से यह उड़ान उड़ने की चेतना करते रहते थे, लोक लोकान्तरों की चर्चाएँ, वेद की पोथी को ले करके, वेद ज्ञान को ले करके जब सर्वत्र दिग्दर्शन कराते तो उस दिग्दर्शन के पश्चात् ब्रह्मचारीजनों से आचार्यजन कहते कि आओ ! यह तो विज्ञान भौतिकवाद है, परमाणुवाद है, एक परमाणु की कितनी तीव्र गति है, एक-एक शब्द के द्वारा परमाणु की गति एक-एक श्वांस के द्वारा परमाणु गति कर रहा है, यह **जो सर्वत्र जगत् है यह परमाणुवाद का जगत् है।** आओ ! आज मैं तुम्हें उन इन्द्रियों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ।

एक समय आचार्य कहता है कि हे ब्रह्मचारियो ! यह सँसार तो तुमने दृष्टिपात किया है। **आज तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ कि जिसे आत्म शांति प्राप्त हो गई हो अथवा उसके द्वारा मानवता प्राप्त हो गई हो।** वह केवल प्रकृतिवाद में ही अपने मानवीय जीवन को समाप्त कर देता है। आओ ! आज तुम्हें हम मनस्तत्त्व और प्राणत्व के सम्बन्ध में ले जाना चाहते हैं।

विचित्र-वृक्ष

मुनिवरो ! हमारे यहाँ यह जो मानव शरीर है यह इस प्रकार का विचित्र वृक्ष है कि इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, दस प्राण हैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं। यह ऐसा सुन्दर वृक्ष प्रभु ने बनाया है इसको विचारना चाहिये। इसके ऊपर प्रत्येक मानव का आधिपत्य होना चाहिए। मानव इस मानव जीवन के

सम्बन्ध में विचार विनिमय नहीं करता, इसको सुन्दर रूपों से नहीं जानता तो हे मानव ! यह कैसी विचित्रता है। जिस गृह में यह अन्तरात्मा रहता है परन्तु उस गृह को मानव सुन्दर रूपों में न जाने यह कैसा आश्चर्य है। यह कैसा अज्ञान मानव के समीप आया है। यह कैसी मृत्यु है। यह सँसार को निगलती चली जा रही है। इन्द्रियों के विषयों को मुक्त नहीं होने देती। आज इनको मुक्त होने की कुछ चर्चाएँ करते चले जाएँ। **इन्द्रियों को मुक्त करना है। ये अपने-अपने रूप में परणित हो जाए, वही इन्द्रियों का मुक्त हो जाना है।**

ज्ञानेन्द्रियों को मुक्त करने की चर्चाएँ

हमारी जो यह ज्ञानेन्द्रियाँ हैं आज इन्हें हमें मुक्त करना है। यह यौगिक साधना है। इसी के लिये हमारे यहाँ आचार्यजन प्रयत्न करते रहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ विषय मुक्त हो जाएँ। इनके द्वारा हम अपनेपन में यह गौरव से उच्चारण करें कि हम भी सँसार में हैं; यह सँसार हम में विराजमान है। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना-अपना विषय होता है। अपनी-अपनी आभाएँ होती हैं। जैसे हमारे चक्षु हैं इनका जो देवता है वह आदित्य कहलाया जाता है। श्रोत्रों का देवता दिशाएँ कहलाई जाती हैं। त्वचा का देवता यह वायु कहलाया जाता है। मन का देवता चन्द्रमा है। प्रत्येक अपनी-अपनी इन्द्रिय का देवता है। उन देवताओं को उस रूप में जान सकते। जब हमारी ये इन्द्रियाँ नाना प्रकार के ये जो सँसार के विषय हैं इससे वे मुक्त हो जाएँ इसमें मानव मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। हम मृत्यु से ही पार होना चाहते हैं। क्योंकि मृत्यु ही हमारे लिये अज्ञान का मूल कारण बन करके आवागमन के चक्रों में भ्रमण करती रहती है। इसी का चक्र हमसे नहीं जा पाता।

वाणी

ऐसा मुझे स्मरण आता रहा है, आचार्यजन भी इसी के ऊपर नाना प्रकार की विवेचना करते रहे हैं। **जब मानव वाणी का उच्चारण करता है** तो यह जो वाणी है यह वाणी अग्नि का स्वरूप बन जाता है। यह अग्नि बन जाती है। कैसी विचित्र अग्नि है, प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा भद्र मण्डल जब वाणी के ऊपर अनुसंधान करने लगता है तो वाणी में मधुरपन है, उसी वाणी के कारण प्रत्येक गृह आश्रम में रहने वाले पति पत्नी अपने गृह को स्वर्ण (स्वर्ग) बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस सम्बन्ध में मुझे नाना वार्ताएँ स्मरण आने लगती हैं। आज मैं नाना वार्ता देना नहीं चाहता हूँ। परन्तु वाणी मानव की इतनी पवित्र होनी चाहिये। जिससे अन्तःकरण में उन सँस्कारों की उपलब्धि न हो जाए, जिन सँस्कारों से हमारे आवागमन का चक्र बन जाए। मानव अपनी वाणी से सदैव मधुर उच्चारण करता रहे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब महर्षि अत्री मुनि महाराज, माता अनुसूइया विराजमान हो करके रात्रि काल में उनकी दर्शनों की चर्चा प्रारम्भ होती। दर्शनों की चर्चा प्रारम्भ हो रही है। लोक लोकांतरों की चर्चाएँ चल रही हैं। ऋषि मुनि आकर के रात्रि दिवस में उनकी चर्चाओं को श्रवण करते थे। उनके गृह में रहने वाले बालक अथवा बालिकाएँ अपने माता पिता का अनुसरण करते रहते हैं। उन विचारों का जब अनुसरण होता रहता है तो गृह भी स्वर्ण बन जाता है। आज हमें गृह को स्वर्ण बनाना है। यह गृह कैसे स्वर्ण बनेगा। यहाँ जब माता अरुन्धति और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ते रहते थे, मानो आत्मा की उड़ान उड़ रहे हैं। राजा दशरथ उनके मध्य में विराजमान हैं, परन्तु उन्हें प्रतीत नहीं होता था कि कौन तुम्हारें आश्रम में विराजमान है। हे मानव ! तू अपनी विचारधारा में इतना तन्मय होजा कि मृगराज, सिंहराज तेरे द्वार पर आ जाए

तो तुझे प्रतीत न हो कि कौन तेरे द्वार पर विराजमान है।

हम विचार विनिमय करते चले जाएँ कि प्रत्येक इन्द्रिय का विषय हमारे समीप होना चाहिए। यह युक्त होनी चाहिए। जैसे हमारी वाणी है जो अग्नि स्वरूप है जब यह संकीर्ण विषय को त्याग देती है तो यही वाणी अग्नि स्वरूप बन जाती है और अग्नि स्वरूप बन करके इसमें अग्नि जैसा तेज आ जाता है। पवित्रता आ जाती है। उस वाणी के द्वार पर जो आता है वह मानव भी अग्नि के सदृश प्रकाशवान बन जाता है।

घ्राण

जैसे हमारी घ्राण इन्द्रिय है, हम घ्राण के द्वारा नाना मन्द सुगन्ध को ग्रहण करते हैं, दुर्गन्ध को भी ग्रहण करते हैं। जब यही घ्राण इद्रिय दोनों विषयों को त्याग देती है साधना के द्वारा तो यह प्राण स्वरूप बन जाता है। हे प्राण ! तू सँसार को निगल जाता है। यह सँसार मन और प्राण के आधार पर स्थित हो रहा है।

मन

आज तुम्हें प्रतीत है कि जितना भी विभाजनवाद है यह नेत्रों के द्वारा दृष्टिपात करके हो रहा है। इसके द्वारा मनस्तत्त्व है, प्राणत्व है। मन और प्राण के द्वारा ही इस सँसार का विभाजनवाद हो रहा है। एक विभाजन करने वाला है और एक विभक्त होने वाला है, इससे ही सर्वत्र जगत विराजमान है। एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय दे रहा है कि यह मेरी माता है, यह महा-माता है, यह पिता है, यह पड-पिता है, यह आचार्य है, यह महान् आचार्य है, सँसार का परिचय देता है, नेत्रों से दृष्टिपात करके। परन्तु नेत्रों के साथ में विराजमान होने वाला

कौन है? यह मनस्तत्त्व है। विभाजन जो हो रहा है वह प्राणत्व है और जो विभक्त कर रहा है वह इस शरीर में वह मन कहलाया जाता है। आज दोनों वस्तुओं को जानने के लिये कोई मानव साधना में जाना चाहता है, एक सूत्र में दोनों को पिरोना चाहता है और जब ये दोनों एक सूत्र में आ जाते हैं तो मानव को सर्वत्र सँसार का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि जब यह विभक्त करना समाप्त कर देता है, तो उसी काल में एक सूत्र में विराजमान हो जाते हैं, उसी काल में विचार विनिमय समाप्त, यह सर्वत्र सँसार एक सूत्र में पिरोया जाता है।

श्रोत्र

इसी प्रकार श्रोत्र हैं। इनका जो विषय है, इनका जो देवता ये दिशाएँ हैं। ज्ञान के द्वारा यह दिशाएँ युक्त होनी चाहिए। विवेक के द्वारा मुक्त होनी चाहिए। जब ज्ञान और विवेक के द्वारा उनकी मुक्ति हो जाती है इनका विषय दिशा ही रह जाती है। दिशा कौन है? पूर्व है, दक्षिणी दिग है, उदीची है, ध्रुवा, ऊर्ध्वा सर्वत्र दिशाओं का एक समन्वय हो जाता है। जब भी इसमें रमण करता है तो उसका स्वरूप एक विचित्र बन जाता है। मानो उन विषयों से मुक्त हो गया है जिनसे यह शुद्ध और अशुद्ध वाक्यों को ग्रहण करता रहा है। सदैव अशुद्ध वाक्यों को नाना प्रकार की विडम्बना भरे शब्दों को ग्रहण करता रहा है। उनसे मानो यह मुक्त हो जाता है। दिशाएँ इसकी अन्वेषण बन जाती हैं। दिशाओं में से शुद्ध शब्दों की आभा तरंगित होने लगती है, उसी मानव के जीवन को मुक्ति से और मृत्यु से इसको मुक्त कराने वाला कौन है? ज्ञान है, विवेक है जिसको हमें धारण कर लेना चाहिए।

नेत्र

इसी प्रकार हमारे नेत्रों का देवता आदित्य है। जब मानव नेत्रों से शुद्ध अशुद्ध को ग्रहण करता रहता है, यह पाप में और पुण्य दोनों में पिरोए हुए रहते हैं और जब यह दोनों समाप्त हो जाते हैं, तो वह जो सुन्दर स्वरूप है आदित्य स्वरूप है, वे सुन्दर बन जाते हैं तो सँसार को दृष्टिपात करने लगता है। हे मानव ! तू आदित्य बन और आदित्य बन करके तू सँसार को दृष्टिपात कर जिससे तेरी मानवीय धारा ऊँची बने, मानवत्व को प्राप्त होता हुआ इस सँसार सागर से पार हो।

साधना का मार्ग

आओ मेरे प्यारे ! प्रत्येक इन्द्रियों का विषय हम जानते रहें, इनको मुक्त करने का सदैव प्रयास करते रहें। **इस वाणी के द्वारा प्रत्येक आभा को जान करके इस सँसार-सागर को जान सकते हैं।** अन्यथा यह सँसार विज्ञान से नहीं नापा जाता। यह सदैव ऐसा ही चलता रहा है, आज पुनः से इस पर हमें विचार विनिमय करना चाहिए। कोई भी मानव सँसार में साधना के क्षेत्र में जाना चाहता है, सँसार को अपने में समेटना चाहता है, तो मन और प्राण दोनों को जानना होगा। क्योंकि मन और प्राण ही इस मानव रूपी वृक्ष का निर्माण करते हैं। और इन्हीं के द्वारा यह सँसार बनता रहता है, इनके द्वारा इसका निर्माण भी होता रहता है। आज हमें इस मन को जानना चाहिये, जिसके द्वारा अपने में स्वयँ अनुभव करें कि वास्तव में हमारा जीवन भी कोई वस्तु है। अन्यथा नहीं। क्योंकि यह जगत् तो इसी प्रकार अन्धकार में रमण करता रहता है। क्योंकि यह प्रकृति जड़वत है, इसमें शून्यता है। यह किसी की सहकारिता से चैतन्यवत को प्राप्त हो रही है। आज हमें उस चेतना को जानना चाहिये, जिसके कारण यह प्रकृति चैतन्य हो रही है, उस चेतना को जानने का प्रयास करना चाहिये।

हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमात्मा की इस प्रतिभा को जानते हुए नाना प्रकार की निहारिकाओं को जानते

हुए हम इस सँसार सागर से पार होने के प्रयास करें। आज मैं अपने प्यारे प्रभु देव की याचना करने के लिये आया हूँ जो सदैव अन्तरात्मा में विराजमान है, हमारे जीवन का सदैव साथी बना हुआ है, लोक लोकान्तरों का रचयिता है। एक दूसरा मण्डल, ऐसे प्राणों को निहित किया है जिससे अपने-अपने क्षेत्र में गति कर रहा है, उसका क्षेत्र प्रभु ने जितना निर्धारित किया है। उसी क्षेत्र में वह क्रियाशील हो रहा है, आज हमें उसको विचारना चाहिये। मानव भी अपने क्षेत्र में गति करता रहता है। परमपिता परमात्मा की छत्र-छाया में जब तक वह परमात्मा की आभा को नहीं विचारता तब तक उसका क्षेत्र विशाल नहीं बनता। आज हमें परमात्मा के क्षेत्र में जाना है, अपने क्षेत्र को विशाल बनाना है। आज हम ज्ञान की उस आभा से आभायित होते हुए इस सँसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

अहल्या की विवेचना

हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें एक गाथा को प्रकट कराया था कि हमारे यहाँ अहल्या आदि नामों का उच्चारण होता रहता है। हमारे वैदिक साहित्य में भी भिन्न-भिन्न स्थलियों पर अहल्या की विवेचना आती रहती है। आज अहल्या का कुछ सूक्ष्म सी वार्ता प्रकट कराना चाहता हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ अहल्या के नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। अहल्या नाम प्रकृति को कहा गया है। अहल्या नाम रात्रि को भी कहा गया है। अहल्या नाम पृथ्वी का भी है। उस भूमि का नाम अहल्या कहा जाता है जो भूमि वज्र के तुल्य विराजमान है। परन्तु उसमें अन्न उत्पन्न किया जा सकता हो। मेरे प्यारे महानन्द जी त्रेता काल की वार्ता प्रकट कराया करते हैं। इन्होंने एक लोकोक्ति प्रकट करते हुए कहा था कि एक समय महर्षि गोतम की देवी अहल्या थी और अहल्या के ऊपर इन्द्र का आक्रमण हुआ और चन्द्रमा उसके द्वारपाल बने और द्वार पर जब उन्हें छला गया तो गोतम ने इन्द्र को सहस्त्रों भगों वाला बनाया और चन्द्रमा को क्षीणता वाला बना करके और अहल्या को वज्र की बना दिया। ऐसा महानन्द जी कहा करते हैं।

हमारे यहाँ ऐसा माना गया है कि **अहल्या नाम पृथ्वी को कहा जाता है।** भगवान् राम का जीवन सदैव विज्ञान में विचरण करता रहता था। जहाँ वे महापुरुष थे वहाँ उनका विज्ञान भी नितांत (पूर्ण) था। जहाँ वे सदैव परमात्मा के क्षेत्र में रमण करते रहते थे। वहाँ वे परमाणुवाद में भी रमण करते रहते थे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब एक समय महर्षि भारद्वाज, महर्षि वशिष्ठ और महर्षि अत्तुरत महाराज और सुमन इत्यादियों का एक समाज एकत्रित हुआ था। **उस सभा में यह निर्णय हुआ कि हम राम को महा वैज्ञानिक बनाना चाहते हैं।** क्योंकि राजा रावण का जो राष्ट्र है वह इतना विशाल है और उसके राष्ट्र में चरित्र की आभा न रहने से हमारा हृदय दुःखित हो रहा है। इसलिए हम चाहते हैं कि ऐसा कोई महापुरुष बने। महर्षि विश्वामित्र ने सभा में यह प्रतिज्ञा की कि मैं उनको धनुर्विद्या प्रदान करूँगा। महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था कि मेरे द्वारा जितना भी राष्ट्र का द्रव्य है, जितना भी वैज्ञानिक यन्त्र है उनको अर्पित कर सकता हूँ, जिससे वे रावण से सँग्राम कर सकें। उस सभा में यह निर्णय हुआ और विश्वामित्र राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों को लाए। याग किया और याग द्वारा उन्हें धुनर्विद्या प्रदान की। जब उन्हें धनुर्विद्या प्रदान करने लगे तो आठ माह तक राम महर्षि भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में रहे और उनको विज्ञानशाला में उन्होंने नाना प्रकार के जहाँ यन्त्रों को जाना वहाँ एक यन्त्र का निर्माण किया गया, जो महर्षि भारद्वाज के शिष्य सुकेता से और पिरीमेण्स नाम के ब्रह्मचारी के सहयोग से जो अनुसन्धानशाला में विराजमान थे, इन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया, उस यन्त्र का नाम **“अहल्या प्रतिभा स्वातन**

यन्त्र'', कहा जाता था। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि पृथ्वी का जो दस-दस योजन गर्भ है उस गर्भ में वह यन्त्र यह निर्णय करा देता था कि अमुक धातु इतनी दूरी पर है, नाना प्रकार की धातु का निर्माण कितनी दूरी पर हो रहा है, ऐसा उन्हें वह यन्त्र दिग्दर्शन कराता रहता था। भगवान् राम को जब यह विद्या पान कराई गई, अहल्या नाम की विद्या का अनुमोदन कराया गया, अहल्या नाम पृथ्वी का है, नाना प्रकार के खनिज, खाद्य जिसके गर्भ में विराजमान हैं, अग्नि का जो स्रोत चल रहा है। यह पृथ्वी में नाना धातुओं का निर्माण करती चली जा रही है। मानो पात बनता है, पात बन करके उसको शुष्क बनाया जाता है, उसी से उनका निर्माण होता चला जा रहा है। भगवान् राम ने उस यन्त्र का निर्माण कराया।

जब महर्षि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण तीनों प्राणी जा रहे थे तब **निषाद से यह कहा** कि हे निषाद ! यह जो भूमि है यह वज्र के तुल्य पड़ी हुई है, मेरा यन्त्र यह कह रहा है कि इस भूमि से तुम अन्न उत्पन्न करो। उनके राष्ट्र में रहने वाले निषाद आदि कृषकों ने उसमें अन्न उत्पन्न किया, इस प्रकार अहल्या (भूमि) के उद्धारक बने, ऐसा मुझे स्मरण है। पर्यायवाची शब्दों में यहाँ गोतम नाम चन्द्रमा का भी है और गोतम परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है।

जहाँ अहल्या पृथ्वी को कहा गया है वहाँ **अहल्या नाम रात्रि को कहा गया है।** यहाँ दर्शन यह कह रहा है कि अहल्या यहाँ रात्रि को कहा गया है। जब रात्रि अहल्या इस चन्द्रमा को अपने सिंगार रूपी अन्धकार को समर्पित कर देती है, उस काल में चन्द्रमा को गोतम कहा जाता है। मानो रात्रि को अपने में समेट करके अमृत की वृष्टि करता है। चन्द्रमा को सोम कहते हैं क्योंकि यह मन का विषय है। मन जब यह नाना प्रकार के शुद्ध-अशुद्ध से मुक्त होता है तो यह मन ही चन्द्रमा का स्वरूप

धारण कर लेता है। जैसे चन्द्रमा अमृतमयी वृष्टि कर रहा है। कृषि की भूमि में अन्न की स्थापना करने वाला कृषक प्रसन्न हो रहा है, चन्द्रमा अपनी कलाओं से मुक्त होता हुआ इसमें अमृत को भरण कर देता है। यही चन्द्रमा है जो पूर्णिमा के दिवस समुद्र की नाना प्रकार की आभाओं को ले करके यह अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा देता है। चन्द्रमा को हमारे यहाँ गोतम कहा गया है। यह गोतम बन करके अमृत की वृष्टि कर रहा है, रात्रि को अपने गर्भ-स्थल में धारण कर रहा है। ऐसा कहा जाता है कि इतने में इन्द्र को प्रतीत होता है और वे आते हैं और अहल्या पर आक्रमण करते हैं और अहल्या को अपने में धारण कर लेता है। और धारण करके मानो चन्द्रमा चिन्हवादी बन जाता है। यहाँ अहल्या नाम रात्रि का है और गोतम नाम चन्द्रमा का है और इन्द्र नाम यहाँ सूर्य को माना है। यह नाना भगों (किरणों) वाला सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है और अन्धकार को अपने में धारण कर लेता है।

मुनिवरो ! अन्धकार कहाँ रहता है। वह जो नाना प्रकार की भगों (किरणों) वाला इन्द्र है-**भग नाम किरणों को कहा गया है।** नाना प्रकार की किरणों को लेकर के अन्धकार को नष्ट कर देता है और अन्धकार इसके समीप नहीं रह पाता। इसी प्रकार गोतम नाम परमात्मा को कहा गया है। परमपिता परमात्मा जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो उस समय वह जो **अहल्या नाम की प्रकृति है** जो शून्यवत है इसको क्रियाशील बनाता है और इसकी स्थली में विराजमान हो करके उसकी चेतना प्रकृति में कार्य कर रही है इसलिए परमात्मा को गोतम कहते हैं और प्रकृति को अहल्या कहा जाता है।

आज मैं पर्यायवाची शब्दों में जाना नहीं चाहता हूँ। आज हम मन को जानना चाहते हैं। यही मन है जो सोम की वृष्टि

करता है। जब यह मन पवित्र हो जाता है, अन्नाद इत्यादि के द्वारा महान् बन जाता है, यही मन है जो मानव को देवता बना देता है। जैसे चन्द्रमा देवता बनकर के सोम की वृष्टि करता है। हिमपात है। नाना रूपों में दृष्टिपात आता है। इसी प्रकार यह मन जब नाना प्रकार के विषयों से मुक्त हो जाता है उसी काल में यह मानव को सुन्दर बना देता है, सँसार को ऊँचा बना देता है। आज हम अपनी इन्द्रियों के विषयों को जानते हुए इस महान् सँसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह जो सँसार है यह नाना प्रकार की तरंगों वाला जगत् है, इसमें कहीं मान है कहीं अपमान रूपी जो तरंगें हैं इन तरंगों से यह मानव प्रभावित हो रहा है, अपने में अपमान को स्वीकार कर रहा है। हे मानव ! इन तरंगों से ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो। इन तरंगों को अपने तक न आने दें। क्योंकि तेरे द्वारा इतना ज्ञान, इतना विवेक होना चाहिए, परमात्मा का इतना आश्रित होना चाहिए जिससे ये तरंगें उस मानव को छू न सकें।

ऋत और सत्

आओ मेरे प्यारे ! जैसे हमने बहुत पुरातन काल में यह कहा था कि जब महर्षि भृगु मुनि महाराज गान गाते थे। ऋत और सत् की प्रतिभा का वर्णन किया करते थे, तो साम गान गा रहे थे, जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरों के साथ नाना प्रकार से वेदों का पठन-पाठन, मन्त्रों को नाना प्रकार की ध्वनियों से उच्चारण कर रहे हैं। मानो हृदय से जो शब्द उत्पन्न होता है उस शब्द का प्रभाव अनन्तवत को प्राप्त होता रहता है। ऐसा मुझे स्मरण आता रहा है कि जब वे गान गाते थे तो हिंसक प्राणी उनके चरणों में ओत-प्रोत रहते थे। क्योंकि वाणी में प्रत्येक इन्द्रियाँ जब मानव की लुप्त हो जाती हैं तो वह बन्धन वाली योनियों का उन्हें भय नहीं होता। जब वह गान गाते थे तो सिंहराज भी

क्योंकि आत्मा की पिपासा मानव को स्वतः जागरूक होती है।

जैसे मानव प्रातःकाल से सायं काल तक अपने उदर की पूर्ति करने का प्रयास करता रहता है। हे मानव ! जब तू शान्त मुद्रा में विराजमान होता है तो मेरा अन्तरात्मा यह पुकारता है कि अरे ! जैसे शरीर को भोजन देना है ऐसे ही इस आत्मा को भोजन देना है। क्योंकि तेरी आत्मा भी पिपासु है। आत्मा का भोजन क्या है? परमात्मा का चिन्तन है। क्योंकि जैसे माता का प्रिय बालक है क्षुधा से पीड़ित हो रहा है और जब माता अपने हृदय से आलिंगन कर लेती है, हृदय में धारण कर लेती है उस माता का अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाता है। क्योंकि उसका जो हृदय व्याकुल था, जिस हृदय के लिए व्याकुल था वह हृदय उसे व्याप्त हो गया। इसी प्रकार आत्मा अपने प्रभु के द्वार पर जाना चाहता है, परन्तु जब निष्पक्ष हो करके विवेक के द्वारा गान गा रहा है, मृगराज, सिंहराज जहाँ विराजमान रहते हैं उन स्थलियों पर गान गा रहा है, उनका अन्तरात्मा भी यह चाहता है कि उन शब्दों को पान कर रहा है जो प्रभु का गुणवादन हो रहा है, वेद ध्वनियाँ हो रही हैं, गान हो रहा है उसको पान करना प्रत्येक प्राणी यही चाहता है। क्योंकि प्रभु का गुणगान है। कोई प्राणी सँसार का ऐसा नहीं है जो परमात्मा की पिपासा में जाना नहीं चाहता है, सदैव यह आकांक्षा रहती है कि मैं प्रभु के द्वार पर चलूँ। इस सँसार को दृष्टिपात करता हुआ अपने कर्मों के बन्धनों से यह इतना व्याकुल हो जाता है कि अपने प्रभु के प्रति इसे कहीं अँकुर प्राप्त हो जाता है, तो वहीं उन अँकुरों को पान करके यह व्याकुल हो जाता है।

एक समय महर्षि सुकेता और महर्षि प्रभाग (प्रह्वाण) दोनों विराजमान थे। इन दोनों आचार्यों का विचार विनिमय हुआ कि बहुत सी योनि सँसार में इस प्रकार की हैं जिनको अन्धकार प्राप्त नहीं होता

परन्तु तो भी प्रकाश के लिए लालायित रहती हैं। कोई-कोई योनि तो ऐसी है जो मानव शरीर को सूर्य के सदृश प्रकाश जैसे सूर्य मानव को दृष्टिपात आता है। वैसे ही वे योनियाँ मानव शरीर को सूर्य के सदृश दृष्टिपात करके अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं। क्योंकि वास्तविक प्रकाश नहीं प्राप्त होता इसीलिए ऋषि मुनियों ने एक-एक वस्तु पर अनुसन्धान किया है प्रत्येक योनि प्रकाश को चाहती है। इसी प्रकार जो मानव विवेक द्वारा गान गाता है, साम गान गा रहा है, मानो उसकी वाणी ऋत् और सत् की प्रतिभा का वर्णन कर रही है। उसको मृगराज, सिंहराज सर्वत्र पान करते हैं और वह पान करते रहते हैं और पान करते हुए अपने में यह स्वीकार करते हैं कि अरे ! हम परमात्मा से विमुख हो गए हैं। यह उनका स्वभाव पुनः जागरूक हो जाता है। विचार विनिमय यह कि प्रत्येक मानव को ऋत और सत् के गर्भ में जाना चाहिए। परमात्मा की आभा को विचार-विनिमय करते हुए हम इस सँसार सागर को पार होने का प्रयास करें और हमारी जो उड़ान है वह इतनी ऊर्ध्व होनी चाहिए। क्योंकि परमात्मा का जो यह क्षेत्र है, नाना ऋषियों ने नाना प्रकार से इस पर कल्पना की हैं। जैसे वैज्ञानिकों ने इसको विज्ञानशाला कहा है, आध्यात्मिक-वेत्ताओं ने इसको अमृतमयी शाला कहा है।

आज हम सँसार को नाना रूपों में वर्णन किया करते हैं। यह सँसार नाना रूपों वाला दृष्टिपात भी हो रहा है। इसलिए **हे मानव ! तू अपने जीवन को किस प्रकार का बनाना चाहता है, किस प्रकार की मानवता चाहता है? उसी प्रकार की आभा में जाने का प्रयास कर।** वैज्ञानिक बनना चाहता है तो तेरी ऊर्ध्व उड़ान होनी चाहिए, परमाणुवाद पर तेरा आधिपत्य होना चाहिए, आत्मा की उड़ान उड़ना चाहता है तो प्रत्येक इन्द्रिय पर तेरा अनुशासन होना चाहिए, इद्रियाँ तेरी प्रकाश में रमण करने वाली हों। परमात्मा के प्रकाश में रमण करने वाली हों यह अन्धकार में जाने वाली न हों।

यह है आज का वाक्य। आज के वाक्यों को उच्चारण करने

॥ ओ३म् ॥

पाँच प्रकार के यज्ञ

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। जो ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है वह महान् मेरा चैतन्य देव प्रभु कहा जाता है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त माना गया है कि वह मानवीय हृदयों में समाहित होता हुआ इस सृष्टि चक्र को क्रियाशील बना रहा है। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि परमपिता परमात्मा कैसा भव्य है तो वह ऋषि-मुनियों के हृदय में अथवा मानवीय हृदयों में सदैव ओत-प्रोत रहने वाला है।

यज्ञ के प्रकार

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था कि 'यज्ञं गच्छत प्रभे यज्ञोवस्य देवाः वृतं लोकाः' वेद का ऋषि यह कह रहा था, मेरे प्यारे महानन्द जी की भी इतनी प्रेरणा रहती है। मानो इतनी प्रेरणा बाध्य करती रहती है कि हम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार विनिमय करें। हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि जितने भी प्राणी यहाँ आते हैं, एक मानव ही नहीं जितना भी प्राणिमात्र है वह सर्वत्र एक याज्ञिक बना हुआ है, वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्राय यह है मानव के लिए ऋषि-मुनियों ने पाँच प्रकार के यज्ञों का चयन किया। जैसे प्रथम

ब्रह्म-यज्ञ कहा जाता है। द्वितीय यज्ञ का नाम देवयज्ञ है, तृतीय का नाम अतिथियज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पञ्चम का नाम भूतयज्ञ माना गया है जिसको हम पितृयज्ञ भी कहते हैं। ये पाँच प्रकार के यज्ञ हमारे यहाँ परम्परा से ही वैदिक साहित्य में निहित हैं।

ब्रह्मयज्ञ

जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि पाँचों प्रकार के जो यज्ञ हैं उनमें सबसे प्रथम ब्रह्मयज्ञ आता रहा है। ब्रह्म का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। प्रातःकाल में ब्रह्म की आभा को जानना और प्रातःकाल की अमृत बेला में ब्रह्मयज्ञ करना। ब्रह्मयज्ञ कहते हैं जो ब्रह्मा को यजमान बना करके स्वयं होता अथवा यजमान बन करके अपना यज्ञ करता है, विचार-विनिमय करता है, अनुसन्धान करता है, उसका नाम ब्रह्मयज्ञ कहलाया गया है।

जैसा हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि सृष्टि का सर्जन करने के पश्चात् परमपिता परमात्मा उसका नियन्ता बना हुआ है अथवा उसको क्रिया दे रहा है, उसको क्रियाशील बना रहा है। तो वह जो चैतन्य देव है, वह जो मेरा प्रभु है वह सृष्टि चक्र को चला रहा है, उनको गति दे रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी उसकी प्रतिभा निहित रहती है जैसे सृष्टि का जब प्रारम्भ होता है तो उस समय परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं। यह आत्मा यजमान बनता है। ये जो पञ्च महाभूत हैं ये होता बनते हैं। यज्ञों की रचना हो जाती है। उस समय **परमपिता परमात्मा सृष्टि रूपी याग का ब्रह्मा बना हुआ है,** उद्गान गा रहा है, उद्गान हो रहा है। सत् गान हो रहा है, ऋत गान हो रहा है, वायु और अग्नि दोनों का मिलान हो करके गान गाया जा रहा है। **वह देव कितना सुन्दर (उसके) उद्गम उद्गार से यह सृष्टि याग प्रारम्भ हुआ। उसी नियन्ता के नियन्त्रण में कार्य हो रहा है। आत्मा इस यज्ञशाला में कर्म करने वाला।** उस याग को जानने के लिए बेटा ! आत्मा रूपी यज्ञशाला में विराजमान है। आत्मा रूपी यजमान कैसा सुन्दर आत्मा है, वह इस सँसार को जानता रहता है, वह सँसार में अनुसन्धान करता रहता है, लोक-लोकान्तरों को जानता रहता है, विज्ञान में जाता है तो **कहीं आध्यात्मिक वाद में परणित होता है कहीं भौतिकवाद में रूपावेश हो जाता है।** तो यह नाना प्रकार की ऋतु वाला यह आत्मवत् अपना कार्य करता रहता है। क्योंकि वह यज्ञशाला में विराजमान है। यज्ञशाला में जो क्रिया होती है उसी क्रिया के अनुसार कहीं यह विचार करने वाला बन जाता है। कहीं भूतयज्ञ करने वाला लगता है, कहीं अतिथियज्ञ होने लगते हैं, तो कहीं देवपूजा होने लगती है। वह ब्रह्म याज्ञिक क्या विचारता है कि मुझे ब्रह्म का चिन्तन करना है। वह कहीं समाधिस्थ हो जाता है। कहीं जनता में जनार्दन को स्वीकार करके कण-कण में प्रभु का दिग्दर्शन करता है। ऐसा जो महापुरुष होता है जो सत्यवत् होता है। वह इस ब्रह्मयज्ञ को जानता है। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मयज्ञ माना है। क्योंकि ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और यज्ञ कहते हैं उस सँसार की रचना को और रचना हो करके यह सँसार चल रहा है। एक लोक दूसरे में निहित हो करके गति कर रहा है। एक अग्नि और वायु मिल करके दोनों गति कर रहे हैं। अन्तरिक्ष और ऋत गति कर रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड ऋत और सत् में दृष्टिपात आ रहा है।

विचार विनिमय क्या कि सबसे प्रथम यज्ञ है। पति-पत्नी एक स्थान में विराजमान हो करके प्रातःकाल ब्रह्मयज्ञ करते हैं। ऋषि-मुनि विराजमान हो करके ब्रह्मयज्ञ करते हैं। ब्रह्म का अभिप्राय है ब्रह्म का चिन्तन। ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्मयज्ञ है।

देवपूजा

द्वितीय यज्ञ का नाम देव-पूजा कहा जाता है। जिसे देव-यज्ञ कहते हैं। हमारे यहाँ दो प्रकार के देवता कहलाते हैं, एक देवता जड़ हैं और दूसरे चैतन्य होते हैं। जड़ देवता ये पञ्चमहाभूत हैं। पञ्चमहाभूतों में उसकी रचना है। जैसे सूर्य, चन्द्र और नाना नक्षत्र, ये हमारे देवता हैं, ये देते रहते हैं। चन्द्रमा सोम अमृत प्रदान करता है। सूर्य हमें तेज देता है; जीवन देता है, ओज देता है, तेज की स्थापना कर देता है। पृथ्वी हमें सुगन्धि देती है, जल हमें अमृत देता है और रस देता है। तेज हमें वायु को प्रदान करती है। वायु हमें प्राण देता है और अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। यह कितना सुन्दर यज्ञ हो रहा है उस मेरे देव का स्वतः ही हो रहा है। जो मानव वाक्य उच्चारण करता है, वायु के भिन्न-भिन्न भेदन माने हैं। आयुर्वेदाचार्यों ने वायु की सहस्रों धाराएँ मानी हैं। विज्ञान ने लाखों-अरबों धाराएँ स्वीकार की हैं। आज मैं विज्ञान के युग में जाकर उन धाराओं का वर्णन करने नहीं आया हूँ।

विचार केवल यह देने के लिए आये हैं कि वह देवपूजा है। देवपूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देवपूजा करें, पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना। तो प्रातःकाल में यज्ञ करता है। देखो राजा जनक जैसा प्रातःकाल में यज्ञ करता है, द्वापर काल में युधिष्ठिर जैसा प्रातःकाल में देवयज्ञ करता रहा है। भगवान् कृष्ण जब प्रातःकाल में देव-यज्ञ करते रहे हैं। भगवान् कृष्ण-जब प्रातःकाल में यज्ञ होता रहता तो यज्ञ करते रहते थे। पत्नी और वे, दोनों यज्ञ करते रहते थे। आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूँगा। यह यज्ञ है इनको करना हमारा कर्त्तव्य है। यज्ञ में जाना हमारा देवत्व पूजन है; यह देव पूजा कहलाती है। द्वितीय प्रकार का यज्ञ है। हमें अग्नि को सुगन्धि देना है, हम जितना लेते हैं दुर्गन्धि के बदले सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बना करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जाएँ, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊँचा बनें। ये पाँच प्रकार की आभाएँ कहलाई जाती हैं। जब यजमान यज्ञशाला में विराजमान होता है तो पुरोहित यही कहता है कि हे यजमान ! यह ‘‘पञ्चमहाभूता अग्नि ब्रह्मलोकः।’’, ब्रह्मलोक में ले जाती है, यह पञ्चमहाभूतों को जानने वाला प्राणी ब्रह्मलोक में चला जाता है। अब जब वेद का मन्त्र, वेद का ऋषि ऐसा कहता है तो उसमें एक आश्चर्य आता है कि ऐसा वेद का ऋषि क्यों कह रहा है? आगे जब एक वेद का मन्त्र आया ‘‘पञ्चम् भूतम् प्रभे वृताः-मन वृत्ति विस्तितो सुत्राः मा वा क्रित्यो मत प्रभि वृताः’’, अब जब यह वेद का मन्त्र स्मरण आया तो इसमें और कुछ दृष्टिपात आने लगा। जब इस वेदमन्त्र का विभाजन किया, विभक्त करके इसका सन्धिपात किया गया तो इसमें क्या-क्या निकला? इसमें यही आया कि पँच महाभूत पाँचों मनके हैं और वे मनके एक ऋतु में पिरोये हुए हैं और वह जो ऋत और सत् है वह ‘ओ३म्’ रूपी धागे में पिरोये हुए हैं। जब ‘ओ३म्’ रूपी धागे को जाना जाता है, सूत्र को जानने वालों को ब्रह्म ही ब्रह्म सदैव दृष्टिपात आता है और वही ब्रह्म कहलाया जाता है।

तो बेटा ! यह हमारे यहाँ पञ्चमहाभूतों की प्रतिक्रियाएँ हमारे यहाँ देवयज्ञ कहलाया है और **देवपूजा इन पञ्चमहाभूतों को जानना** है। ये जड़ देवता हैं। परन्तु एक देवता हमारे यहाँ चैतन्य देवता है, ब्राह्मण देखो वेद का पठन-पाठन करने वाला उसको हम पुरोहित भी कहते हैं, उसको पराविद्या को जानने वाला भी कहते हैं, ब्रह्म के निकट चला गया है। हमारा यजमान कहता है यज्ञशाला में हे पुरोहितो ! आओ मेरे यज्ञ को पूर्ण करा करके मुझे परा-विद्या में ले जाओ, मैं इस सँसार से उपराम होना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की आभाएँ स्मरण आती रहती हैं तो वह ज्ञान और विज्ञान मानव को ऊर्ध्व पर ले जाता है। उसके पश्चात् यह ‘‘पुरोहितम् ब्रह्मे।’’, यह चैतन्य पुरोहित कहलाते हैं, यह ‘‘प्रतम् ब्रह्मो’’, देखो पुरोहितों के द्वारा यज्ञ होता रहता है। यज्ञ का

अभिप्राय है कि मानव को अच्छाइयों में परणित होना। सुन्दर धाराओं को, धर्म के मर्म को जानना। देवपूजा करना। उनको सुगन्धित करना यह यज्ञ कहलाया गया है। जहाँ यह यज्ञ है उसको देवयज्ञ कहते हैं। जहाँ दोनों चैतन्य और जड़ देवताओं की पूजा होती है। **पूजा का अर्थ है उनको सदुपयोग में लाने का नाम पूजा कहलाई जाती है।**

अतिथि यज्ञ

आगे चल करके वेद का ऋषि कहता है कि तृतीय जो यज्ञ है वह अतिथियज्ञ है। अतिथि कौन होता है? ''अतिथि प्रभावृता।'' **जो किसी की तिथि निश्चित न हो और वह श्रीमान् गृह आ जाये तो उसको अतिथि कहते हैं।** उसको नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराना, उदर की पूर्ति कराना उसको अतिथि कहते हैं। यजमान कहता है कि अतिथि आ, तू मेरे गृह के साकल्य को पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दीजिए। **देखो पुण्यवान के गृहों में ही बुद्धिमान अतिथि आते रहते हैं।** कौन है? जो बुद्धिमान तपस्वी होता है। वह जो गृह में आता है अतिथि बन करके वह अपने पुण्यों को त्याग देता है। जब वह गृह में त्याग देता है तो वह ''पुण्याद पुण्याद देवस्तः''। वेद का ऋषि कहता है कि वे पुण्यवात् पुरुष होते हैं जिन गृहों में महापुरुष आते रहें और महापुरुषों की तरंगें होती रहें। वह अपने शब्दों के चित्रों को गृह में त्याग देता है। बेटा ! मैं विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को भी दो शब्द उच्चारण करने हैं। विचार क्या कि मैं इस विचार को बहुत ऊर्ध्वगति में ले जाऊँ। इतनी ऊँची उड़ान नहीं उड़ना चाहता हूँ। क्योंकि अतिथि का अभिप्राय यह है कि वह अपने पुण्य को त्याग देता है और वह यजमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है और हृदय में प्रसन्नता को मुक्त कर देता है मानो वह अतिथि यज्ञ कहलाया गया है।

बलिवैश्व-यज्ञ

अब बलिवैश्व-यज्ञ, बलिवैश्व है जो प्राणी के लिए अपने जीवन में सुगन्धि देते हैं। प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं, उन पक्षियों के लिए जो वाणी से वाक उच्चारण नहीं कर सकते। वाक उच्चारण तो कर लेते हैं परन्तु वह विद्या परिश्रम से तो (मानव) जान पाता है। आज उन प्राणियों को देना हमारा बलिवैश्व यज्ञ है। अग्नि को देना, अग्नि उन्हें प्रदान कर देती है। अग्नि उसका हव्य बन करके उनको प्राप्त करा देती है उसको बलिवैश्वयज्ञ कहते हैं।

भूतयज्ञ

एक भूतयज्ञ कहलाया जाता है। जिसमें पुरोहित-जन होते हैं और जितने महापुरुष होते हैं, उनमें माता और पिता भी आते हैं, उनका पूजन करना अर्थात् उनका यथोचित उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने का नाम उनकी पूजा कहलाई जाती है। आज जब उनकी सेवा की जाती है, उनका युक्त आदर किया जाता है, आचार्यों का भी और माता पिताओं का भी वह हमारे यहाँ पितृ-यज्ञ कहलाते हैं। पितृ कौन होते हैं? पितर की बहुत विशाल व्याख्या है, माता पिताओं का नाम भी पितर है, राजा को भी पितर कहते हैं, पितर नाम आचार्यों का भी है, पितर नाम परमात्मा का भी है, पितर नाम अग्नि का भी है, पितर वायु को भी कहा गया है, पितर नाम अन्तरिक्ष को भी कहते हैं। पितर नाम यज्ञ को भी कहा गया है और पितर नाम हमारे यहाँ राजाओं का भी जो अधिराज होता है उसको भी पितर कहते हैं। पितर का अभिप्राय है कि जिससे हमारी रक्षा होती हो उसी का नाम पितर कहलाया गया है। मैं पितरों की व्याख्या देने तो नहीं आया। समय मिलेगा मैं इसकी व्याख्या प्रकट करूँगा।

आज का विचार कि हम पञ्चमहायज्ञों के करने वाले बनें। ये पञ्चमहायज्ञ के करने वाला यजमान अपने गृह को सुन्दर बनाता है। अपने गृह को पितृ-यज्ञी बनाता है, देव यज्ञी बनाता है, विचित्र यज्ञी बना करके इस संसार सागर से पार होता है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी दो

॥ ओ३म् ॥

गृह प्रवेश

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया जाता है। मानव के जीवन में परमपिता परमात्मा वरण करने योग्य है, जो मानव उसका वरण कर लेता है वह मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है। आओ ! आज हम परमपिता परमात्मा की और अपने मध्य में जो नाना सन्धियाँ हैं उन सन्धियों को हम एक सूत्र में लाना चाहते हैं। परन्तु वह नाना सन्धियाँ क्या हैं? वह जो नाना प्रकार की जो प्रकृति की अमूल्य तरंगें हैं अथवा मूल में, मन में विराजमान रहती हैं, उन मूल तरंगों को हम अपने मध्य से दूरी करते हुए ज्ञान और विवेक के द्वारा व्यापक बनाते हुए और उसको आकुंचन करते हुए अथवा अपने मध्य में वह जो प्रभु का परम सुखद, आनन्द रूप कहलाया जाता है। उस आनन्द रूप को प्राप्त करने के लिए हम नाना प्रकार की जो हम सीमाओं में परणित रहते हैं। उन सीमाओं से हमें उत्तीर्ण होना है, उन्हें अपने से दूर करना है जिससे हमारे जीवन में महत्ता की तरंगें ओत-प्रोत हो जाएँ।

गृह प्रवेश की विवेचना

मेरे प्यारे महानन्द जी आज मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे हैं उन प्रेरणाओं के आधार पर मैं कुछ अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूँ। जहाँ परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता है, जहाँ परमपिता परमात्मा की अपने मध्य में सन्धि करने का प्रयास किया जाता है, वह विषय तो भिन्न बन जाता है। उस विषय पर किसी काल में गम्भीरता से विवेचना करने लगूँगा तो उसके लिए समय की आवश्यकता है। आज तो केवल इतना उच्चारण करना है कि मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे यह प्रेरित कर रहे हैं कि गृह के सम्बन्ध में कुछ अपनी विवेचना प्रकट कीजिए। प्यारे महानन्द जी का यह कथन है कि गृह में जब मानव प्रवेश करता है, वास करता है तो निर्माणवेत्ता प्रथम गृह का निर्माण कर लेता है। **यहाँ दो प्रकार के सिद्धान्त माने जाते हैं।** एक सिद्धान्त तो यह स्वीकार करता है कि गृह का निर्माण होने से पूर्व ही चेतना का प्रवेश हो जाता है। कुछ सिद्धान्त यह माना जाता है कि गृह पूर्ण होने पर गृह का प्रवेश हो। यहाँ मूल में यह माना जाता है कि जिस समय गृह का निर्माण होने लगता है, तो चेतना का वास उस काल में हो जाता है। परन्तु यहाँ आयुर्वेद सिद्धान्त कुछ कह रहा है।

मेरे प्यारे ! महात्मा धनवन्तरि जी मानो इससे पूर्व जो वैद्ध राज हुए हैं अश्वनी कुमार मानो देखो सुखनायक (सुधन्वा) नामक वैद्य हुए लंका में, तो उनका विचार इस सम्बन्ध में भिन्न है। गृह का प्रवेश उस काल में होता है जब गृह पूर्ण हो जाता है। परंतु यहाँ हमारा दार्शनिक सिद्धान्त यह है कि चेतना का प्रवेश गृह के निर्माण के समय से ही होता है।

जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में भी दो प्रकार के सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। एक सिद्धान्त तो यह माना जाता है कि माता के गर्भस्थल में बालक जरायुज का निर्माण हो जाता है। उस समय आत्मा प्रवेश करती है। आत्मा अन्न के द्वारा, जल के द्वारा मानो पुरीतत नाम की नाड़ी में और पंचम नाड़ी में, जाकर के गृह में प्रवेश करती है। मानो वह शरीर प्रवेश होने का द्वार है। **वह उस आत्मा के गृह का द्वार है। जिसको नाभि कहते हैं।**

इसी प्रकार कुछ आचार्यों का सिद्धान्त है कि जिस काल में रज और वीर्य दोनों कणों का प्रवेश होता है तो जीवात्मा उस समय 'कणाः गृह' ऋतियों के द्वारा प्रवेश करती है। यह अश्वनी कुमार और महात्मा ध्रुव और महाराजा सुखड़ना (सुधन्वा) का भी इस सम्बन्ध में कुछ विचार है। **परन्तु दार्शनिक विचार यह कहता है कि चेतना का प्रवेश उस काल में हो जाता है जिस समय मन के संकलन बन जाते हैं, जिस समय मन के संकलनों का निर्माण हो जाता है।** जब गृह निर्माणवेत्ता गृह का निर्माण करता है तो निर्माण करते समय चेतना का एक विचार बनता है। आत्मा का विचार बनता है। शरीर के सम्बन्ध से बनता है। वह संकल्प करता है उसी संकल्प के साथ में गृह का प्रवेश हो जाता है।

गृह में जब वास होता है तो वहाँ विचारों का याग होता है, विचारों का प्रवेश होता है। जिस प्रकार माता के गर्भ-स्थल में जरायुज का निर्माण हो जाता है तो निर्माण के पश्चात् आत्मा का प्रवेश यह किन्हीं किन्हीं आचार्यों का सिद्धान्त है कि जब आत्मा का प्रवेश हो जाता है वहाँ ज्ञान और प्रयत्न की जो तरंगें हैं जिससे गुणी पृथक नहीं होता मानो उस समय उसमें ज्ञान, क्रिया का स्थापन होता है। जहाँ निर्माण है, प्रवेश तो वहाँ है। परन्तु जहाँ चार माह के पश्चात् क्रिया का प्रारम्भ होता है वह उसका प्रवेश द्वार माना है। इसी प्रकार गृह का निर्माण तो उस काल में होता है जिस समय महाराजा विरोचन जैसे गृह का निर्माण कर देते हैं। गृह में नाना प्रकार के खनिजों के द्वारा वह द्वार को और गृह को पूर्ण बना देते हैं।

परन्तु प्रवेश तो उस काल में क्योंकि निर्माणकर्त्ता का विचार बन गया, निर्माणकर्ता की भावना उसमें ओत-प्रोत हो गई। उनका संकलन बन गया। उस संकलन के साथ में वही संकल्प उसका द्वार माना जाता है। वह उसका प्रवेश है। जिस समय गृह में क्रिया प्रारम्भ होती है, **गृह प्रवेश उसे कहते हैं जहाँ क्रिया का प्रारम्भ होता है।**

क्रिया किसे कहते हैं? विचारों को, नाना प्रकार की आभा कृतियों को हम क्रिया कहते हैं। क्रिया का यहाँ प्रवेश होता है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि आज क्रिया के प्रवेश के समय आप अपना कुछ मन्तव्य प्रकट कीजिए। मैं नहीं जानता कि कैसी क्रिया का प्रवेश है? इसको मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरित कर रहे हैं। मैं उसके आधार पर कुछ वाक्य प्रकट कर रहा हूँ। पुरातन काल में मुझे गृह निर्माण कराने का, क्रिया प्रवेशों का बहुत सा सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। राष्ट्रीय ध्वज में बहुत सा समय प्राप्त होता रहा है। राजाओं को चुनौती देने का बहुत सा समय मुझे प्राप्त रहा है, वहाँ उनका राज्याभिषेक करना, उन्हें शिक्षा देना, उन्हें राष्ट्रीय विचारों पर लाना। यह उसकी क्रिया का नाना प्रकार से अनुमोदन करना और इडा, पिंगला और

सुषुम्ना तीनों नाड़ियों का जहाँ मिलान होता है, वहाँ एक ध्वज होता है। हमारे यहाँ अनिमा होती है, अनिमा नामक घृत होता है। उससे उसका अग्न्याधान किया जाता है। क्योंकि इडा, पिंगला, सुषम्ना तीन प्रकार की नाड़ियों का वहाँ मिलान होता है। यहाँ नाना प्रकार की औषधियों का जैसे **तेज भानु है, जटायासी है, सुकेत केतु है, त्रिभानु है, चन्द्रनाति है इस सर्व का लेपन किया जाता है।** लेपन क्या उसका ध्वज रखा जाता है, जहाँ तीनों नाड़ियों का प्रवेश होता है। उसका अभिप्राय केवल इतना होता है कि वह तीनों नाड़ियाँ सदैव चेतना में बद्ध रहती हैं।

इसीलिए राजा का राज्याभिषेक होता है, राज तिलक होता है, उसके मूल में भी यही होता है कि यह तीनों प्रकार की नाड़ी हैं ये सदैव चेतना में रहें और तीनों गुण इसमें चेतनित रहें। त्रिविद्या तेरे राष्ट्र में हो, मानो त्री गुण कार्य करते रहें, त्रिविद्या हो, तीनों पदार्थों के ऊपर तेरे राष्ट्र में अनुसन्धान होता रहे तो ऐसा गृह पति के लिए कहा जाता है, राज्याभिषेक किया जाता है।

इसी प्रकार जब गृह का प्रवेश होता है तो वहाँ यजमान को यह कहा जाता है कि हे यजमान ! तेरा गृह विचारों में सुन्दर होना चाहिए। तेरे गृह में विचार ऊँचे होने चाहिए। जिससे मन का, आत्मा का तप बना रहे। हीनता प्राप्त न हो। प्रकाश में जीवन बना रहे। ऐसा सदैव विचारों का मन्तव्य रहा है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

प्रवचन-दिनाँक 22 सितम्बर, 1975 **क्रमशः**

॥ ओ३म् ॥

अग्नि के स्वरूप

जो आनन्द है वह आत्मा का गुण है। आनन्द की पिपासा में यह अपने सखा के लिए मार्ग को प्राप्त करता है। जैसे समिधाओं में अग्नि विराजमान है और जब अग्नि विराजमान रहती है तभी समिधाएँ भस्म होती हैं और यदि वह अग्नि नहीं होगी तो अग्नि में उसका स्वाहा (भस्म) नहीं हो सकता। वह अग्नि में प्रविष्ट हो करके सूक्ष्म अग्नि को साकार अग्नि में जब प्रविष्ट कर देते हैं तो वह अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और वह अग्नि प्रकाश देने वाली बनती है। वह वही अग्नि है और वह अग्नि सूक्ष्म बन करके द्युमण्डल में देवताओं की सभा में मन्थन होती है और जब अग्नि का मन्थन होता है तो कुछ अग्नि द्युलोक को प्राप्त हो जाती है, कुछ अग्नि लोक में प्रदीप्त हो जाती है। वह जो द्युमण्डल की अग्नि है, वही अग्नि नाना प्रकार की विद्युत बन करके वह अणुओं में भी प्रविष्ट होती रहती है। परमाणुओं में भी परणित रहती है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु में भी विराजमान रहती है। मेरे प्यारे ! वह जो अग्नि है वह परमाणुओं में विराजमान होने लगती है तो वह अग्नि वही है जो लोक की अग्नि थी। दोनों स्वरूप उसके बने, लोक की अग्नि बनी और वह वैश्वानर नाम की अग्नि द्युलोक को प्राप्त होने वाली अग्नि बनी। परन्तु वह जो मन्थन की जाने वाली अग्नि है, इसी अग्नि में प्रतिभा अश्वात विराजमान रहता है। आज इस सम्बन्ध में मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। विवेचना केवल यह है कि जैसे आज हम सूर्य का अश्वात कर रहे थे, जैसे अग्नि यज्ञशाला में प्रदीप्त हो रही है, अग्नि का जो सखा है वह ऊर्ध्व में रहने वाला है। इसी प्रकार हे मानव ! तेरे शरीर में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, अग्नि का जो प्रभाव चल रहा है वह अग्नि कृतियों में विराजमान होती चली जाती है, इस अग्नि को हम सदैव अपने में धारण करने वाले बनें और अग्नि पर प्रायः अनुसन्धान करने वाले बनें।

पूज्यपाद-गुरुदेव

॥ ओ३म् ॥

मन की शक्ति

इसी प्रकार आध्यात्मिक-वेत्ता जो पुरुष होते हैं, परमात्मा का चिन्तन करने वाले जो पुरुष होते हैं उन चिन्तन करने वाले पुरुषों में यह जो मन की तरंगे होती हैं जो नाना रूपों में बिखरी हुई होती हैं, कुछ स्रोतों के द्वारा, कुछ चक्षु के द्वारा, कुछ घ्राण के द्वारा, त्वचा के द्वारा, नाना रूपों में यह नाना प्रकार की बिखरी क्रान्ति है। इसको जो योगी अपने मनस्तत्व को ऊँचा बनाता हुआ, तपस्या करता हुआ वह जो मन की शक्ति है वह जो नाना रूपों में बिखरी हुई रहती है, उस बिखरी हुई अमूल्य शक्ति को अपने में एकत्रित करता है। जब वह अपने में एकत्रित करना प्रारम्भ करता है तो वह योगी अपने प्राण को, मन को प्राण रूपी सूत्र में उसको जकड़ देती है अथवा उसमें समावेश करा देता है। जब वह प्राण के क्षेत्र में चला जाता है और प्राण और मन दोनों एक क्षेत्र में आ जाते हैं, उनका एक गृह हो जाता है। एक गृह को जाने के पश्चात् मानो यह प्राण ही इस सँसार में ओत-प्रोत हो रहा है। जब मन प्राण के साथ में एकीकरण हो जाता है तो इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि सँसार के अनेकता को एकता में दृष्टिपात करके एक सूत्र में पिरोने वाले जगत को अपने में दृष्टिपात करने लगता है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

यौगिक प्रवचन माला भाग-9 — प्रवचन-दिनाँक 2 मई, 1976

Two Souls in one Body

In Continution

In the Dwapar age, Maharaja Dhrit Rashtra expressed his desire to get in detail a description of the battle of Mahabharta from Sanjaya and it is said, that Lord Krishna provided Sanjaya with divine eyes for this purpose. But in fact, Sanjaya could get a detailed account of the battle of Mahabharta and convev the same to Maharaja Dhritrastra only with the help of material Science. Today we see that messages are conveyed through the medium of instruments. This can also be done with the help of spiritual science. Those possessing the spiritual science know how are the souls are associated. As a matter of emergency this body has been made to function as an instrument. Contact with the souls in their subtle bodies is established and their speeches are delivered through my body. Thus two souls do not come together in one single body, rather what does happen is that the soul of the body rises up and gets in contact with souls in their subtle bodies and as a result of the contact their voices are transmitted through the medium of this body. In order to fully comprehend the secrets of the above, it is necessary that a man should, first of all be free from his shortcomings, be polite and well versed in the Yogic practices and must have a sound knowledge of the spiritual science. A knowledge of the material science only will not be sufficient. It must be accompanied with a knowledge of the spiritual science.

O Sages! A person who has not acquired the Knowledge of spiritual science and says that he possesses all the learning of God is simply talking high-sounding words and nothing more. Such persons may attain worldly knowledge but not spiritual knowledge. In order to attain spiritual knowledge and be a spiritual scientist it is necessary that a person must proceed on the path of Yoga and attain proficiency in its practice.

O Son! This is my talk of today. The substance of a that I told today is that we must, in order to have a full knowledge of the material and spiritual sciences, follow the path of Yoga. We must not look to the defects of others but to those of our own. We must be grave and polite. Only then our life will be great and noble. Here comes to an end my talk of today.

Pujyapad Gurudev

Yogic Wisdom of the Ancient Rishies.

Parvachan Dated 9th December, 1962

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री वी.पी. सिंह, वसुंधरा, गाजियाबाद	250 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्रीमती शशि गुप्ता, नोएडा	125 रुपये
डॉ. ओ.पी. आर्य, आगरा	125 रुपये
श्री गुलजार सिंह, जगत पुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली	100 रुपये
श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़।	100 रुपये
श्री राहुल शर्मा, बैंगलोर	100 रुपये
श्री पराग शर्मा, नोएडा	100 रुपये

॥ ओ३म् ॥

स्मृति

स्व. श्रीमति विमला त्यागी

श्री राम नारायण त्यागी जी निवासी ग्राम रूहाना, जिला मुजफ्फर नगर, उ.प्र. ने अपने निवास स्थान 80, नई मन्डी, घेर खत्ती, मुजफ्फरनगर से अपने सुपुत्र श्री संजय त्यागी व पुत्रवधु वर्षा त्यागी से अथर्ववेद पारायण ब्रह्म महायाग का आयोजन कराया और उसकी सम्पन्नता पर 2101 रुपये का सात्त्विक सहयोग पूज्यपाद गुरुदेव की अमृतवाणी को साहित्य रूप में प्रकाशित कराने के लिये अपनी धर्म पत्नि की स्मृति में प्रदान किया। जिसके लिए समिति हृदय से बारम्बार आभार प्रकट करती है।

समिति निरन्तर सहयोग के लिए परिवार के सभी सदस्यों का हृदय से आभार प्रकट करती है और दीर्घायु, सुख, शान्ति एवम् सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए परमपिता परमात्मा से विनय करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)

यौगिक प्रवचन के स्वामित्व व अन्य विवरण का ब्यौरा फार्म नं. 4 (नियम नं. 8)

1. प्रकाशन स्थान : दिल्ली
2. प्रकाशन अवधि : मासिक
3. मुद्रक : डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रसाद
   नागरिकता : भारतीय
   मुद्रक का पता : ए-59, पँचशील एन्कलेव, नई दिल्ली-110017
4. प्रकाशक : डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रसाद
   नागरिकता : भारतीय
   प्रकाशक का पता : ए-59, पँचशील एन्कलेव, नई दिल्ली-110017
5. सम्पादक का नाम : डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रसाद
   नागरिकता : भारतीय
   सम्पादक का पता : ए-59, पँचशील एन्कलेव, नई दिल्ली-110017
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों। : वैदिक अनुसंधान समिति (पंजी.)

मैं डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रसाद एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रसाद

प्रकाशक के हस्ताक्षर

वैदिक अनुसंधान समिति (पंजी.)

सी-38, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017

॥ ओ३म् ॥

चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से एवम् पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (पूर्व श्रङ्गी ऋषि जी) के शुभ आशीर्वाद से प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग का आयोजन लाक्षागृह, बरनावा में श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय के प्राँगण में दिनाँक 17 मार्च 2013 से 24 मार्च 2013 तक बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ आयोजित किया जा रहा है जिसमें आप सब अपने सम्बन्धियों व मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

कार्यक्रम

दिनांक 17 मार्च, 2013 से रविवार 24 मार्च 2013 रविवार तक

प्रातः 6:15 बजे से 6:30 बजे तक	ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या)
प्रातः 6:30 बजे	ओउम् ध्वजा रोहण (केवल प्रथम दिन)
प्रातः 7:00 बजे से 10:00 बजे तक	देव यज्ञ (चतुर्वेद ब्रह्म पारायण यज्ञ)
प्रातः 10:00 बजे से 11:00 बजे तक	वेद प्रवचन व ईश भजन
प्रातः 1:30 बजे से 2:45 बजे तक	भजनोपदेश
प्रातः 3:00 बजे से 6:00 बजे तक	यज्ञ वेदोपदेश सन्ध्या एवं भजन
प्रातः 7:30 बजे से 9:15 बजे तक	भजनोपदेश

यज्ञ के शुभ अवसर पर भोजन व उपवास की व्यवस्था है।

श्री गाँधीधाम समिति (पंजी.)

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	50.00
2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	50.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	50.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	50.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	50.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	50.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	25.00
9.	धर्म का मर्म	30.00
10.	शंका-निवारण	25.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	25.00
13.	देवपूजा	20.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	110.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	100.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	100.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	20.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	40.00
22.	महाराजा-रघु का याग	25.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	25.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	30.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	25.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	20.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	30.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	30.00
29.	याग-मन्जूषा	25.00
30.	आत्म-दर्शन	25.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	25.00
32.	याग और तपस्या	45.00
33.	यागमयी-साधना	30.00
34.	यागमयी-सृष्टि	25.00
35.	याग-चयन	25.00
36.	दिव्य-रामकथा	100.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	25.00
38.	दिव्य-ज्ञान	35.00
39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	80.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	25.00
41.	आत्म-उत्थान	30.00
42.	तप का महत्व	30.00
43.	अध्यात्मवाद	25.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	35.00
45.	वैदिक-प्रभा	30.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	35.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	30.00
50.	आत्मा का भोजन	35.00
51.	साधना	30.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	60.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	60.00
57.	माता मदालसा	40.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	60.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	65.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	70.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
	पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज एवम्, कर्म भूमि लाक्षागृह	10.00

वर्ष 41 : अंक : 486
मार्च 2013

मूल्यः
पाँच रुपये

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक
अनुसंधान समिति पंजी०
के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38,
शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।
(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

POSTED AT N.D.PS.O ON 10-03-2013
Published on 5th day of the same month